IJNRD.ORG ISSN : 2456-4184
INTERNATIONAL JOURNAL OF NOVEL RESEARCH AND DEVELOPMENT (IJNRD) | IJNRD.ORG
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

# प्रगतिशील समाज और शिक्षा में समावेशी शिक्षा की भूमिका

कमल कान्त
असि0 प्रोफेसर
शिक्षक–शिक्षा विभाग
डी.ए.वी. कॉलेज, कानपुर

## सारांश

''समावेशी शिक्षा सभी शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं को पूरा करने की दिशा में विद्यालय प्रणाली में एक महत्वपूर्ण नवाचार ह। शिक्षा प्रक्रिया में सभी बच्चों के समावेशन के लिए विद्यालय प्रणाली में सुधार हेतु पाठ्यक्रम में परिवर्तन, शिक्षण विधियों में परिवर्तन तथा अधिगम विधियों में परिवर्तन के साथ–साथ दिव्यांग व सामान्य बच्चों की अन्तर–क्रियात्मक प्रक्रिया में सकारात्मक परिवर्तन किये जा रह हैं। दिव्यागों की ओर ध्यान आकर्षित करने एवं उनकी देखभाल, शिक्षा व प्रशिक्षण की आवश्यकता को रेखांकित करने की दृष्टि से वर्ष 1981 के अन्तर्राष्ट्रीय विकलांग दिवस के रूप में तथा 1993 को दक्षेस विकलांग दिवस घोषित किया गया था। इसके अतिरिक्त 1983 से 1992 के दशक को संयुक्त राष्ट्र विकलांग व्यक्ति दशक तथा 1993–2002 के दशक को एशिया व प्रशान्त क्षेत्र आर्थिक व सामाजिक आयोग विकलांग व्यक्ति दशक के रूप में मनाया गया। इसी क्रम में नई दिल्ली में भारतीय पुनर्वास परिषद (ब्ब) तथा आत्मविमोह, मानसिक पक्षाघात, बहुविकलांगता तथा मानसिक मंदता वाले व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय न्यास की स्थापना की गयी है। सर्वशिक्षा अभियान (।) तथा जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (क्च्च्) में भी दिव्यांग बच्चों की शिक्षा के लिए विशेष प्रयास किये जा रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ ने समावेशी शिक्षा के सम्बन्ध में सन् 1994 में बताया है कि स्कूलों को बच्चों की शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक, संवेगात्मक या अन्य दशाओं पर ध्यान दिये बिना सभी को प्रविष्ट करना चाहिए। इससे सामाजिक समन्वय को बल मिलता है और विभिन्न प्रकार के बालकों के समाज में बराबर के भागीदार बनते हैं और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा मिलता है। इसलिए समावेशी शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु यह आवश्यक समूह कि दिव्यांग बालकों को सामान्य बालकों के साथ सभी पक्षों से अवगत कराया जाये ताकि वे भी समाज के एवं राष्ट्र के कुशल एवं सबल नागरिक बन सकें।''

**परिचय**– वर्तमान प्रगतिशील समाज और शिक्षा में विकास या प्रगति का पथ नित नई ऊँचाइयों को प्राप्त कर रहा है। शिक्षा से समाज प्रगति की ओर है और समाज से शिक्षा प्रगति की ओर अग्रसर है। इस प्रगति के साथ–साथ हमारे समाज और शिक्षा में कई दोष भी दृष्टिगोचर होते हैं जिससे समाज प्रभावित हो रहा है। स्कूल समाज के लघु रूप हैं और इन स्कूलों में कई प्रकार के बच्चे अध्ययन करते हैं। बच्चे भविष्य के निर्माता कहे गये हैं फिर बालक चाहे सामान्य बालक हो, या प्रतिभाशाली बालक हो या विशिष्ट बालकों की श्रेणी में आता हो, सभी को समान अवसर व अधिकार प्राप्त हं फिर भी वर्तमान प्रगतिशील समाज में विशिष्ट बालकों के प्रति समझ की कमी दिखाई पड़ रही है जिससे समावेशी शिक्षा की भूमिका आज आवश्यक एवं महत्वपूर्ण हो गयी है।

समावेशी शिक्षा से तात्पर्य दिव्यांग बच्चों को सीखने–सिखाने की प्रक्रिया हेतु उपयुक्त वातावरण तैयार करके उन्हें सामान्य बच्चों के साथ शिक्षा प्रदान करने से है। विद्यालयों में विभिन्न प्रकार के बच्चे पढ़ने के लिए आते हैं जो बच्चे शारीरिक रूप से अक्षम यानि अन्धे, बहरे या गूंगे आदि होते हैं वे एकदम से पहचाने जाते हैं लेकिन जो बालक मानसिक रूप से अस्थिर होते हैं उनको पहचानना काफी मुश्किल कार्य हैं जो बालक शारीरिक या मानसिक रूप से अपंग होते हैं वे सामान्य बच्चों के मुकाबले कुछ कम सीख पाते हैं। समावेशी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य इस प्रकार के बच्चों में छिपी हुई योग्यता को उभारना है ताकि उसकी योग्यता का प्रयोग देशहित में किया जा सके। आज के समय की यह आवश्यकता है कि प्रतिभावान बालकों की ओर ही ध्यान न दिया जाये बल्कि जो बालक सामान्य से कम है उनकी तरफ भी उचित ध्यान देकर उनकी योग्यता में और निखार लाया जाये। यदि सामान्य बुद्धि से नीचे वाले बालकों की तरफ उचित ध्यान दिया जायेगा तो वे बड़े होकर राष्ट्र की उन्नति में सहयोग कर सकेगें। इससे समाज और शिक्षा में और मजबूती आयेगी।

कोठारी आयोग ने यह सुझाया कि शारीरिक रूप से अपंग बालकों को शिक्षा दया की दृष्टि से नहीं बल्कि उनके सदुपयोग के आधार पर देनी चाहिए। उचित शिक्षा देने से शारीरिक रूप से अपंग बालक में आत्मविश्वास पैदा होता है तथा वह भी अपने आप को समाज का अभिन्न अंग मानता है। आयोग ने आगे यह भी सुझाया कि दिव्यांग बालकों को शिक्षा देने का मूल उद्देश्य यह होना चाहिए कि बालक अपने आपको सामाजिक सांस्कृतिक वातावरण में समायोजित कर सकें। दिव्यांग बालकों पर इस बात का ध्यान रखा जाये कि उनकी शिक्षा किसी भी प्रकार से सामान्य बालकों से अलग न हो। आयोग ने यह भी सुझाया कि दिव्यांग बालक पढ़ने, लिखने, गणित का कार्य करने, प्रयोगात्मक कार्य करने या सामाजिक सांस्कृतिक सम्बन्ध आदि में सामान्य बालकों से पीछे न रहे। अक्षम बालकों के लिए 'विशेष विद्यालयों' की स्थापना की शुरूवात 18वीं शताब्दी के मध्य में हुई थी लेकिन जब से मनोविज्ञान ने शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश किया है तो यह महसूस किया

गया कि हमें इन विशिष्ट बालकों को अलग नहीं करना चाहिए क्योंकि यह मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक व शिक्षा की दृष्टि से उचित नहीं है। क्रुक शंक के अनुसार ''विशिष्ट बालकों की शिक्षा सम्पूर्ण शिक्षा का हिस्सा है।''

यद्यपि कुछ परम्परागत सोच वाले व्यक्ति विकलांग बच्चों के द्वारा सामान्य कक्षाओं में अनुकूलतम गुणवत्ता की शिक्षा प्राप्त करने के प्रति सभंकित है फिर भी एक बड़ा वर्ग दिव्यांग बच्चों की समावेशी शिक्षा के प्रति पूरी तरह से समर्पित है। निःसंदेह समावेशी शिक्षा सभी विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को पूरा करने की दिशा में विद्यालय प्रणाली में एक महत्वपूर्ण नवाचार है। शिक्षा प्रक्रिया में सभी बच्चों के समावेशन के लिए विद्यालय प्रणाली में सुधार हेतु अनेक परिवर्तन लाने होगें। पाठ्यक्रम में परिवर्तन, शिक्षण विधियों में परिवर्तन तथा अधिगम विधियों में परिवर्तन के साथ–साथ दिव्यांग व सामान्य बच्चों की अन्तरक्रियात्मक प्रक्रिया में भी सकारात्मक परिवर्तन लाने हागें। समावेशी शिक्षा के अन्तर्गत स्कूलों, अधिगम केन्द्रों तथा शिक्षा प्रणाली को इस प्रकार से बदलना होगा कि वे देखभाल, पोषण व सहायता देने वाले शैक्षिक समुदायों में परिवर्तित होकर सभी छात्र व अध्यापकों की आवश्यकताओं को पूरा कर सकें।

समावेशी शिक्षा के अन्तर्गत परम्परागत विद्यालयी संस्कृति में बदलाव लाकर क्रियाशील अधिगम, प्रमाणित मूल्यांकन प्रविधियाँ, कार्यपरक पाठ्यक्रम, बहुस्तरीय अनुदेशन तथा शिक्षार्थियों की वैयक्तिक व विशिष्ट आवश्यकताओं पर अधिक ध्यान देने की मान्यता निहित रहती है। इसलिए समावेशी शिक्षा संस्थानों से न तो नियमित शिक्षा प्रदान करने की तथा न ही विशिष्ट शिक्षा प्रदान करने की अपेक्षा है वरन् सभी बच्चों को एक साथ समेकित ढंग से अधिगम कराना अपेक्षित है। अर्थात यह शिक्षा व्यवस्था सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध होती है एवं इनमें सभी बच्चों का प्रतिभाग व अधिगम सुनिश्चित किया जाता है। इसलिए इस प्रणाली में अधिगम व सुनिश्चित किया जाता है। इसलिए इस प्रणाली में अधिगम व प्रतिभाग में बाधक तत्वों को पहचानकर उन्हें दूर करने पर विशेष जोर दिया जाता है। अतः समावेशी शिक्षा को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो पूर्व में अलग–थलग किये समूहों सहित सभी छात्रों को विद्यालय की मुख्य प्रणाली में सम्मिलित करके उन्हें अधिगम व प्रतिभाग करने की परिस्थितियों में प्रभावी ढंग से उपलब्ध कराती है जिससे दिव्यांग बालक भी समाज का प्रबल व सक्षम नागरिक बन सकें।

**समावेशी शिक्षा को प्रकृति**– समावेशी शिक्षा की प्रकृति निम्नलिखित है–

- समावेशी शिक्षा द्वारा समर्थ तथा असमर्थ बच्चे एक दूसरे के नजदीक आते हैं तथा एक दूसरे को समझकर अच्छे वातावरण की स्थापना करते हैं।

- समावेशी शिक्षा द्वारा विद्यालयी वातावरण अच्छा बनता है।
- सामान्य बच्चों के साथ पढ़न पर असमर्थ बच्चों को विशेष सुविधायें उपलब्ध कराई जाती है।
- समावेशी शिक्षा में समर्थ तथा असमर्थ दोनों प्रकार के बच्चे शामिल होते हैं।
- यह असमर्थ/दिव्यांग बच्चों पर विशेष जोर देती है।
- असमर्थों को इस सामाजिक संसार में रहने के लिए अधिक विस्तृत क्षेत्र मिलता है।

**प्रगतिशील समाज में समावेशी शिक्षा**– वर्तमान समाज आज के तकनीकी एवं सूचना संचार प्रौद्योगिकी के जरिये हर क्षेत्र में तेजी से प्रगति कर रहा है। इस प्रगति का ही परिणाम है कि समाज के हर प्रकार के वर्ग के व्यक्तियों पर ध्यान दिया जा रहा है। सभी को शिक्षित कर समाज का सबल एवं योग्य नागरिक बनाने में कार्य पुरजोर तरीके से सम्पादित किया जा रहा है। इस हेतु विभिन्न समितियां एवं आयोगों का गठन भी सम्मिलित है। इसी का परिणाम है कि आज के प्रगतिशील समाज में समावेशी शिक्षा की भूमिका भी महत्वपूर्ण हो गयी है। जिसके माध्यम से समाज के प्रत्येक बालक को उचित शिक्षा दी जाये, समाज के प्रत्येक बच्चे की वास्तविक शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जाये। ऐसे साधन उपलब्ध करवायें जायें जिससे कक्षा–कक्ष से जुड़े कर्मचारी छात्र–छात्राओं की दूसरी समस्याओं को दूर कर सकें एवं समाज के अध्यापकों व विशेष शिक्षक की योग्यताओं का लाभ इन बालकों को भी मिले।

कई आलोचक इस बात को लेकर आलोचना करते हैं कि विशेष शिक्षा बच्चों को शिक्षा के बराबर अवसर देने की बजाय पृथकता की भावना पैदा करती है। इस शिक्षा से समाज में असमर्थ बालकों में हीन भावना पैदा होती है। बच्चे के समाजीकरण की प्रथम पाठशाला परिवार है। इसे अस्वीकारने का कोई ठोस आधार भी नहीं है। इस समाजीकरण के अनेक प्रारूप हो सकते हैं परन्तु इतना तय है कि बच्चे के समाजीकरण में परिवार की अहम भूमिका होती है। परिवार में बच्चे के समाजीकरण की उचित प्रक्रिया समावेशन हेतु आधार भूमि तैयार करती है। एक सामान्य बच्चे के सन्दर्भ में यह बहुत जरूरी है लेकिन एक विशेष आवश्यकता वाले बच्चे के लिए इसके गहन निहितार्थ है। विशेष आवश्यकता वाले बच्चे के समावेशन का द्वार समाजतंत्र में उसके समुचित समावेशन से होकर गुजरता है। समाज लोकतांत्रिक मूल्यों को प्रश्रय देता है। यदि समाज में निर्णयों में सहभागिता है, समाज में सभी को अपनी सहमति या असहमति व्यक्त करने के समान अवसर है तब इतना निश्चित है कि समावेशन के बारे में बच्चे के मजबूत सकारात्मक अनुभव होगें। इसके विपरीत होने की स्थिति में छात्र समावेशन के बारे में नकारात्मक अनुभव ग्रहण करेगा।

उदाहरण के लिए–

1. समाज में खान–पान शिक्षा व्यवसाय सम्पत्ति आदि के बारे में निर्णय एवं सहभागिता में लैंगिंक आधार पर विभेद किया जाता है या नहीं।
2. समाज में या आस–पास मौजूद शारीरिक एवं मानसिक रूप से विशेष चुनौती वाले बच्चों/व्यक्तियों के प्रति समाज का नजरिया किस प्रकार का है?
3. समाज के सामाजिक एवं आर्थिक रूप से अपवंचित वर्गों के बच्चों के प्रति समाज का नजरिया किस प्रकार का है।
4. समाज के लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए पोशक वातावरण है या नहीं।

समाज एवं परिवेश से प्राप्त समावेशी अनुभव, व्यवहार, विश्वास एवं संस्कृति के आधार पर बच्चों में समावेशी मूल्यों का विकास होता है। इस प्रकार बच्चे को परिवार, विद्यालय एवं समाज से ऐसे समावेशी अनुभव, समावेशी व्यवहार, समावेशी विश्वास एवं समावेशी संस्कृति उपलब्ध करायी जानी चाहिए जिससे वह एक ऐसे लोकतांत्रिक नागरिक के रूप में विकसित हो सकें जो समावेशन के मूल्यों में दृढ़ आस्था रखता हो। प्रगतिशील समाज में समावेशी शिक्षा का महत्व निम्नवत है–

**मानसिक विकास** – विशेष शिक्षा से बच्चों के मन में मनोवैज्ञानिक द्वंद्व पैदा हो जाता है। असमर्थ बच्चे यह सोचत हैं कि वे साधारण बालकों से किसी प्रकार से कम है तभी उनको विशेष विद्यालय में शिक्षा दी जा रही है लेकिन समावेशी शिक्षा में असमर्थ बालक को साधारण बच्चों की तरह समान अवसर प्राप्त होते हैं। बच्चों में हीन भावना का विकास नहीं होता एवं दिव्यांग बालकों का सामान्य बालकों के साथ उनका मानसिक विकास होता है।

**सामाजिक मूल्यों का विकास**– सामान्य विद्यालयों में विशिष्ट बालकों को शिक्षा देने से उनमें सामाजिक गुणों का विकास होता है क्योंकि यहाँ पर बच्चे सभी प्रकार से बालकों के साथ सम्पर्क में आते है। इस प्रकार से असमर्थ बालकों में प्यार, दयालुता, समायोजन, सहायता, भाईचारा आदि सामाजिक गुणों का विकास होता है।

**समानता का सिद्धान्त**– भारतीय संविधान में प्रत्येक बालक को बिना किसी भेदभाव के एक समान शिक्षा देने की बात कही गयी है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए असमर्थ बालकों को समावेशी शिक्षा देना आवश्यक है।

**कम खर्चीली**– विशेष शिक्षा देने के लिए काफी पैसा खर्च करना पड़ता है क्योंकि विशिष्ट बालकों के लिए सभी प्रकार के शैक्षिक कार्यक्रमों का प्रबन्ध करना पड़ता है। इनके लिए विशेष रूप से प्रशिक्षण प्राप्त अध्यापक, डाक्टर आदि की आवश्यकता पड़ती है जबकि सामान्य विद्यालयों में इस प्रकार की काफी सुविधाएं पहले से ही होती हैं। असाधारण बालकों को साधारण बालकों के साथ विद्यालयों में पढ़ाना कम खर्चीला होता है। इस दृष्टि से समावेशी शिक्षा अधिक सस्ती है।

**प्राकृतिक वातावरण**– जब असमर्थ बालक सामान्य बच्चों के साथ साधारण विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करते हैं तो उनमें इस भावना का विकास नहीं होता कि वे किसी बात में सामान्य बालकों से कम हैं। सामान्य बालक भी इनको अपना साथी मानने लग जाते हैं तथा दिव्यांग बालक अपने आपको सहजता से समायोजित कर लेते हैं। इस प्रकार समाज में जो प्राकतिक रूप से सकारात्मक का वातावरण है, बना रहता है।

**शैक्षिक वातावरण**– जब असमर्थ बालक को सामान्य विद्यालय में प्रवेश दिया जाता है तो वह शैक्षिक तौर पर अपने आपको विद्यालय में समायोजित कर लेता है। अध्यापक का व्यवहार भी उनको अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान करता है तथा बालक शैक्षिक दृष्टि से उन्नति करता है। उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर हम यह कह सकते हैं कि प्रगतिशील समाज में समावेशी शिक्षा एक सकारात्मक एवं महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है जिससे समाज में सभी को साथ लेकर चलने व अच्छा सौहार्द बनाय रखने व असमानता की भावना दूर करने में सार्थक सिद्ध हो रही है।

**शिक्षा में समावेशी शिक्षा**– 'समावेशन की नीति को हर स्कूल एवं पूरी शिक्षा व्यवस्था में व्यापक रूप से लागू किये जाने की जरूरत है। बच्चे के जीवन के हर क्षेत्र में चाहे वह स्कूल में हो या बाहर, सभी बच्चां की भागीदारी सुनिश्चित किये जाने की जरूरत है। स्कूलों को ऐसे केन्द्र बनाये जाने की आवश्यकता है, जहाँ बच्चों को जीवन की तैयारी करायी जाये और यह सुनिश्चित किया जाये कि सभी बच्चे खासकर शारीरिक एवं मानसिक रूप से असमर्थ बच्चों और कठिन परिस्थितियों में जीन वाले बच्चों को इस क्षेत्र के सबसे जयादा फायदे मिल सकें।' (छ.ब्थ. 2005 पृ0 96) शिक्षा में समावेशन का वैचारिक एवं दार्शनिक आधार यह है कि–

1. प्रत्येक बच्चा स्वाभाविक रूप से सीखने के लिए अभिप्रेरित होता है। बच्चों को सीखने–सिखाने के क्रम में समुचित अवसर देने की आवश्यकता होती है।

2. बच्चों को सिखाने से पूर्व सीखने–सिखाने के लिए तैयार करने हेतु समुचित वातावरण की आवश्यकता होती है।

3. सीखना किसी माध्यम या इसके बगैर भी सम्भव हो सकता है। अतः इसके लिए सीखने–सिखाने की प्रक्रिया आरम्भ करने से पूर्व बच्चे के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं अन्य परिप्रेक्ष्य को जानना या समझना महत्वपूर्ण है ।

4. शिक्षार्थियों की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं भाषायी पृष्ठभूमि के प्रति आदर रखना।

5. बच्चों के सीखने के तौर–तरीकों में विविधता होती हे, जैसे अनुभवों के माध्यम से, प्रयोग करके, चर्चा करने, पढ़ने, प्रश्न पूँछने, चिन्तन करने, छोटे–बड़े समूह में गतिविधियाँ करने आदि तरीकों से बच्चा सीखता है।

उपर्युक्त समावेशी शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने तथा इसके आधारभूत सिद्धान्त का सम्यक अनुश्रवण करने की दृष्टि से वर्तमान प्रगतिशील समाज में समावेशिक स्कूलों का गठन अथवा पुरातन परम्परागत स्कूलों का काया परिवर्तन कर समावेशी शिक्षा की व्यावहारिक क्रियाकलापों को अपनाया जा रहा है।

आज के वर्तमान प्रगतिशील समाज के शिक्षा व्यवस्था में समावेशी शिक्षा की भूमिका निम्नलिखित रूप से दृष्टिगत हो रही है।

1. समेकित शिक्षा व्यवस्था में दिव्यांगों के समावेशन को एकल प्रयास घटना के रूप में न देखकर एक सतत् प्रक्रिया के रूप में समझना व स्वीकार किया जाने लगा है।

2. स्कूल के क्रियाकलापों में सभी छात्रों, अध्यापकों, अभिवावकों व सामुदायिक सदस्यों के प्रतिभाग को बढ़ावा दिया जा रहा है एवं इसे बनाये रखने की अनुशंसा की जा रही है।

3. शिक्षा व्यवस्था में छात्रों की विविधता को ध्यान में रखकर स्कूलों की संस्कृति, नीति व क्रियाकलापों की पुनर्संरचना की जा रही है।

4. शिक्षा प्रणाली में समावेशी शिक्षा के अन्तर्गत समावेशन पृष्ठभूमि में किसी/ किन्हीं छात्र की विशिष्ट आवश्यकता या समस्या पर अधिक जोर न देकर अधिगम की बाधाओं को पहचानने व उन्हें दूर करने पर ध्यान दिया जा रहा है।

5. शिक्षा व्यवस्था में छात्रों व अध्यापकों को समुचित पाठ्यक्रम व शिक्षण–प्रशिक्षण विधियाँ, समुचित सूचना तंत्र, अधिगमीय वातावरण तथा प्रभावी सहायता सुविधाएं उपलब्ध कराने पर विशेष जोर दिया जा रहा है।

स्पष्ट है कि शिक्षा व्यवस्था में समावेशी शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत दिव्यांग छात्रों को उनकी आयु वर्ग के सामान्य सहपाठियों के साथ कक्षा में पढ़ाया जा रहा है जहाँ परस्पर सहयोग व मित्रता

एवं क्रियाशीलता पर ध्यान दिया जाता है। अध्यापन सामान्य व दिव्यांग बच्चों के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों को पोषित करता है। इस प्रकार से समावेशी शिक्षा में परिवार स्कूल भागीदारी, सामान्य व विशिष्ट शिक्षकों का सहयोग, वैयक्तिक शिक्षा योजनाएं, समूह नियोजन, प्रभावी संचरण, एकीकृत सेवा, सतत् प्रशिक्षण तथा शिक्षक विकास जैसे विभिन्न पक्ष सम्मिलित रहते हैं। शिक्षा व्यवस्था में शिक्षकों द्वारा कक्षाओं में सामुदायिक भाव विकसित करने के लिए विशेष रूप से संरचित खेल, छात्र प्रतिभाग, वैयक्तिक विभेदों की चर्चा, गीत व संगीत का प्रशिक्षण, शारीरिक सहयोग आदि माध्यम से समावेशी शिक्षा को सफल बनाया जा रहा है। इस प्रकार वर्तमान शिक्षा प्रणाली को समावेशिक बनाया जा रहा है।

सुझाव– प्रगतिशील समाज व शिक्षा में समावेशी शिक्षा के सम्बन्ध में सुझाव निम्नलिखित हैं–

1. राष्ट्र के सभी भागों में दिव्यांगों की शिक्षा तक पहुँच शीघ्रता के साथ बनायी जाये।
2. समावेशी शिक्षा में उपलब्ध आधारभूत संरचना तथा संसाधनों का सुधार करके उपयोग किया जाये।
3. दिव्यांगों को शिक्षा व प्रशिक्षण प्रदान करके सर्वाधिक समाधान प्रदान किया जाये।
4. समावेशी शिक्षा हेतु प्रशिक्षित अध्यापक व सुविधायें प्रदान की जाये तथा जो भी कमियां इस सम्बन्ध में आयें। उसका समुचित समाधान ढूंढ कर निवारण किया जाये।
5. दिव्यांग बालक–बालिकाओं को शिक्षा की मुख्यधारा में लाने का सर्वाधिक सरल व सहज तरीका अपनाया जाये ।

निःसंदेह समावेशी शिक्षा सम्बन्धी प्रयासों की सफलता के लिए आधारभूत संरचनाएं, संवेदनशीलता, पहल, समझ, सहयोग तथा क्षमता निर्माण की समुचित ढंग से पूर्ति आवश्यक है। इन मूल संघटकों के अभाव में समावेशी शिक्षा का कोई भी कार्यक्रम कदापि प्रभावी ढंग से संचालित नहीं किया जा सकता है। यह अत्यन्त खेद का विशय है कि अपनी विशेषताआं के बावजूद अभी भी विशेष पहल में कमी है। अतः सबको शिक्षा संकल्प की पूर्ति के लिये इस दिशा में सक्रिय प्रयास करने की आवश्यकता है।

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची


1. सचान, ए०एस० एवं अन्य (1997): अधिगम अक्षमता वाले बालकों का मुख्यधारा में सम्मिलन, विकास पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली
2. सम्प्रेषण (2007): समावेशी शिक्षा के अन्तर्गत 'श्रवणवाधिता' विषय आधारित दस दिवसीय शिक्षक प्रशिक्षण संदर्शिका, विहार शिक्षा परियोजना परिषद, पटना
3. ठाकुर, यतीन्द्र (2017): समावेशी शिक्षा, आगरा, अग्रवाल पब्लिकेशन्स प्रथम संस्करण।
4. नारंग, सुनीता (2009): विशिष्ट शिक्षा, नई दिल्ली, कल्याणी पब्लिशर्स, द्वितीय संस्करण।
5. समर्थ (2006): समावेशी शिक्षा हेतु तीन दिवसीय शिक्षक प्रशिक्षण संदर्शिका, विहार शिक्षा परियोजना परिषद, पटना
6. राष्ट्रीय न्यास अधिनियम (1999): सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
7. गुप्ता, एस०पी० : भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास व समस्याएं, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन, संशोधित संस्करण
8. दुबे, शरतेन्दु: विशिष्ट शिक्षा, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन, संशोधित संस्करण।


International Research Journal
IJNRD
Research Through Innovation